दाँत

प्रेमपाल शर्मा

दाँत

https://www.hindiadda.com/daant/

आप उनसे कभी भी मिलिए, एक बात निश्चित है कि वे देखते ही फक्क से हँस देंगी।

आप उन्हें जानते हों या नहीं, यह हँसी आपमें दिलचस्पी पैदा कर सकती है।

वैसे उनको वैसा ही देखता आ रहा हूँ, जैसा पंद्रह साल पहले देखा था। काली, गोल-मटोल, भारी कद-काठी, सिर में चुपड़ा खूब-सा तेल और सदा हल्के रंग की साड़ी। मुझे नहीं लगता कि उन्हें कभी आईने की या आईने को उन्हें देखने की जरुरत पड़ती होगी। अपने छोटे-छोटे पैरों से आश्चर्यजनक रूप से तेज चलतीं, जो उनके भारी बदन से और भी छोटे लगते और चाल और तेज।

किसी भी मानदंड से आप उन्हें सुंदर नहीं कह सकते। पहली बार में न जानने वाले लोग उन्हें बदसूरत भी कह दें तो कोई आश्चर्य नहीं।

लेकिन उस मुस्कराते चेहरे को उनमें गिना जा सकता है जो देखते-देखते सुंदर लगने लगते हैं।

मुझे तीन महीने उन्हीं के साथ काम सीखना था। उन्हीं की बगल में मेरी सीट लगा दी गई या कहिए खाली थी, जिस पर किसी के आने का इंतजार था। कुछ बड़ी-सी मेज। मेज के अनुपात से जाहिर है, वह उनसे अगला पद था।

जब तक मैं दफ्तर पहुँचता, वे दर्जन-भर फाइलें निबटाकर मेरी मेज के बाएँ कोने पर रख देतीं। दफ्तर सुबह नौ बजे का था। पर यकीनन वे साढ़े आठ तक पहुँच जाती होंगी। लगभग भागती हुई-सी, जैसे कोई लेट होने पर चलता है।

बीच-बीच में किसी मामले को विस्तार से जानने की कोशिश करता तो वे भी बताने की कोशिश करतीं। तुरंत सीट से उठतीं और पलट-पलटकर, कुछ पृष्ठों पर उँगली रखती जातीं। बस, खड़े-खड़े ही, क्योंकि बैठने से उनके छोटे-छोटे हाथ फाइल तक ठीक ढंग से नहीं पहुँच पाते थे।

मैं जल्दी ही जान गया कि वे अपनी बात ज्यादा अच्छे ढंग से नहीं कह पातीं। सारा काम अच्छी तरह से करने के बावजूद। शायद इसीलिए वे किसी उच्च अधिकारी के बुलावे पर भी बहुत उत्साह से नहीं जाती थीं। बीच-बीच में बस मुस्कराती रहतीं। बिना आवाज किए।

हो सकता है, उनके मुँह की बनावट ही ऐसी हो - मैं कभी-कभी सोचता। फिर एक दिन उन्होंने पार्टी दी। कई सहकर्मी शामिल हुए, जिसमें ज्यादातर मलयाली थे, जहाँ की वे थीं। दूसरे लोग भी थे, लेकिन कम।

उनकी बेटी बारहवीं में पास हुई थी। अकेली बेटी।

प्रतिशत का पता तो अभी चलना था, पर उनकी खुशी दाँतों की चमक से साफ जाहिर थी।

पार्टी के लिए कुछ सामान वे घर से ही बना लाई थीं और चाय के लिए कैंटीन में आर्डर दे दिया था। लोग बाद में भी बधाई देने आते रहे।

मैंने मार्क किया, तब भी वे सिर्फ मुस्कराती रहीं। बोलते तो आने वाले ही थे। उसी दिन पता चला कि उनके पति भी बराबर के कृषि मंत्रालय में हैं।

'आप दोनों सुबह साथ-साथ ही निकलते होंगे? मैंने पूछा।'

'नहीं। वो तो बहुत लेट आता है। और शाम को भी बहुत लेट जाता है।'

पति एक पद बड़े थे। मैंने अपनी मेज से तुलना की। इतनी ही बड़ी मेज होगी उनकी। इसीलिए लेट आने की छूट है। सरकार इसी का नाम है। जितना आगे बढ़ते जाओ, उतना ही लेट आने की स्वतंत्रता।

यहाँ तक कि चोटी पर पहुँचने पर आना भी जरूरी नहीं है। हाँ, सरकार की यह चोटी कोई निश्चित नहीं है। कहीं भी, कितनी भी ऊँची-नीची हो सकती है।

मैंने उनके पति के लेट आने के बारे में नहीं पूछा। पूछना भी नहीं चाहिए था। अपने बारे में उन्होंने खुद बताया, 'बेटी साढ़े सात पर निकलती है। मेरा खाना तब तक बन जाता है। फिर मैं तैयार होती हूँ। आठ की बस। हस्बैंड तभी उठते हैं।'

'बेटी तो अब कॉलेज जाएगी?'

'उसने स्टाफ सेलेक्शन का टेस्ट किया है। आजकल टाइपिंग भी सीख रही है।' उन्होंने सीधा जवाब नहीं दिया। शायद कहना चाहती हों, कॉलेज के बारे में बाद में सोचेंगे।

वे खुद भी मैट्रिक थीं। चार बहनों में नीचे से दूसरी।

'एक बहन यहीं दिल्ली में रहती है। बाकी सब केरला में।'

'और माँ-बाप?'

'बाप तो बहुत पहले खत्म हो गया। माँ केरल में रहती है। कभी-कभी आ जाती है। अब तो दो साल से नहीं आई। चल-फिर नहीं सकती।'

'आप चली जाती हो?'

'हाँ, हर साल। मई में जाती हूँ एक महीने को। तीस दिन रह गए हैं।'

वे कैलेंडर देखकर बोलीं, जैसे इंतजार कर रही हों।

जब तक वे छुट्टियों से लौटीं, मैं दूसरे अनुभाग में ट्रेनिंग के लिए भेज दिया गया था।

मैं लंच से लौटकर अपने काम को समझने की कोशिश कर रहा था। वे अचानक आईं और प्लास्टिक का लिफाफा मेरी तरफ बढ़ा दिया, 'मंदिर का प्रसाद है।'

'अरे, बैठो तो।'

वे नहीं बैठीं तो मैं भी खड़ा हो गया, 'और सब ठीक है?'

'हाँ, सब ठीक है। मैं चलती हूँ। बहुत काम पड़ा है। '

मैंने लिफाफा खोलकर देखा, उसमें कुछ सूखे केले के टुकड़े, नारियल की गिरी के कुछ टुकड़े और कुछ नमकीन था।

मैंने थोड़ा चखा और फिर बाँट दिया। दरअसल मुझे अच्छा भी नहीं लगा था।

लगभग पंद्रह वर्ष फील्ड पोस्टिंग के बाद मैं फिर उसी महानगर में आ गया था। और उसी कार्यालय में जहाँ मिसेज कुट्टी थीं।

भारत सरकार जितनी भी बातें करे, एक बात तो निश्चित है - जो भी बात सरकार करने लगे, समझो, वही बड़ी बुराई बनने वाली है। जातिवाद हो या सांप्रदायिकता, समानता हो या खर्च में कमी।

मिसेज कुट्टी वहीं थीं जहाँ मैंने उन्हें छोड़ा था। पंद्रह साल से भी ज्यादा से क्लर्क की क्लर्क। मानो समानता की बातें उन पर लागू न होती हों। और मेरी न केवल टेबल बड़ी हो गई थी, उसके कोने भी चार से छह हो गए थे। वातानुकूलित कक्ष अलग।

वे देखते ही मुस्कराईं - 'मुझे पता था! आर्डर मैंने ही टाइप किया था।'

'आप कैसी हैं?' मैंने बैठने के लिए नहीं कहा, 'बेटी? मिस्टर कुट्टी?'

'बेटी की नौकरी लग गई। उसकी शादी हो गई।'

उनके दाँत खिलते ही मेरी आँखों के सामने पंद्रह वर्ष पहले के दिन घूम गए।

'अरे, बहुत अच्छा - और हस्बैंड?'

'वह रिटायर हो गया। तीन साल हो गया। ठीक नहीं रहता। सिगरेट बहुत पीता है।' शुरू में मुझे उनकी तू-तड़ाक की भाषा बड़ी अटपटी लगती थी, फिर समझ में आया कि अहिंदीभाषी भारतीय हिंदी बोलते ही ऐसे हैं।

मिसेज कुट्टी दिन-भर चींटी-सी अपने काम में जुटी हुई मिलेंगी। मैंने उन्हें कभी बिना काम बाहर जाते नहीं देखा। कोई दोस्ती निभाते नहीं देखा। दिन में एकाध बार पानी का गिलास लिए बस बाहर निकलेंगी। लंच भी अपनी सीट पर और उसी मित्र के साथ, जो पंद्रह साल पहले भी आती थी। थोड़ी-बहुत सूचनाएँ होती हैं तो केरल समाज की बदौलत। वरना उन्हें कोई सूचना चाहिए भी नहीं।

'अब तो आपका प्रमोशन भी आ रहा होगा।' मैं उनके काम की निष्ठा के मद्देनजर पूछता हूँ।

'पता नहीं। कहते हैं, पहले सीनियरटी लिस्ट बनेगी, तब प्रमोशन होगा। मेरा तो बहुत पीछे है।'

'और सीनियरटी का झमेला शायद कोर्ट में पड़ा है।'

उन्होंने कुछ नहीं कहा, वरना अमूमन सरकारी कर्मचारी ऐसे ढक्कन छूते ही पचास आरोप-प्रत्यारोपों का अनर्गल रोना रोने लगते हैं। वे चाहे किसी भी हैसियत के हों।

मैं उनसे स्टाफ के मामलों में अकसर सलाह लिया करता।

सबसे अच्छा पक्ष था, उनकी ओजोनी तटस्थता - राग-द्वेष, उठा-पटक से रहित।

'शोभा को नहीं लीजिए अपने सेक्शन में।'

मैं उनके मुँह की तरफ देखने लगा - बिना कोई प्रश्न किए। उन्होंने फिर भी ताड़ लिया।

'बस, मैंने कह दिया... बिल्कुल नहीं लेना। आपकी बदनामी हो जाएगी।' स्वर संतुलित, लेकिन नजर दूसरी तरफ।

मैंने पहली बार उनके चेहरे पर मुस्कराहट से अलग भाव देखा।

मैंने जब-जब शोभा के बारे में जानने की उत्सुकता दिखाई, उन्होंने मुझे एक बच्चे की तरह मानकर छोड़ दिया, 'क्या बताऊँ... सब जानते हैं, फिर कभी बताऊँगी। क्या करना जानकर!'

जब कभी उनकी बेटी आती, वे उसे मुझे मिलाने लातीं। मैं संभवतः बार-बार उन्हीं बातों को दुहराता, 'हमने आपके रिजल्ट की पार्टी खाई थी। कैसी हो? हस्बैंड ठीक हैं...'

बेटी भी साँवली थी, पर नाक-नक्श ज्यादा पैने। कद-काठी मिलती-जुलती।

एक छवि उसमें थी, जो संभवतः इस उम्र में सभी में होती है।

क्या मिसेज कुट्टी भी ऐसी रही होंगी इस उम्र में? मैं उन दोनों के कमरे से निकल जाने के बाद सोचता और खड़ा होकर कोने के शीशे में अपना चेहरा देखता। क्या मेरे बेटे में भी कुछ लोग मेरा चेहरा खोजते होंगे या मुझमें मेरे बेटे का!

बाहर वाले के लिए यह काम ज्यादा आसान होता है क्योंकि वह अच्छे-बुरे के फेर से परे निर्णय लेता है समानता के इन सूत्रों को मिलाते वक्त।

घर, दफ्तर, महानगर... मैं फिर से शहर की नसों में जगह बनाने की जद्दोजहद में था।

पंद्रह वर्ष में दिल्ली इतनी बदल गई थी! कौन कहता है, भारतीय समाज में परिवर्तन नहीं हो रहा है! नगरों में तो इतना ज्यादा हो रहा है कि क्रांति कह सकते हैं - पतन क्रांति।

निश्चित ही मैं उन दिनों चिड़चिड़ा हो गया था। दफ्तर में एक अधेड़ महिला सहकर्मी चाय के समय आती थी। शुरू में चाय शुरू हुई। यह बैठक पिछले कुछ महीनों में बढ़कर घंटों तक पहुँच गई थी।

मिसेज कुट्टी बीच-बीच में आतीं। जान-बूझकर नहीं। किसी काम को समाप्त करने की उतावली में। मैं कभी कर देता, कभी फाइलें रखवा देता और कभी कहता, 'बाद में आना। जल्दी क्या है?'

हमारी बातें इस बीच रुक जातीं। पता नहीं, महिला सहकर्मी क्या सोचती थी, पर मुझे ऐसे समय किसी का आना बर्दाश्त नहीं होता था।

हम फिर किसी बात का सूत्र पकड़ते और उसे पकड़े-पकड़े कई पर्वत-शिखरों पर घूम आते। बीच-बीच में मैं इधर-उधर की खाइयों की गहराई को देखकर डरता भी जाता।

पता नहीं, महिला इतनी पवित्र थी या इतनी बेधड़क कि उसके चेहरे पर कभी कोई झेंप, डर या संकोच का चिह्न तक नहीं आता। इससे मेरी हिम्मत और बढ़ती। वह औरत होकर नहीं डरती तो मैं तो पुरुष हूँ!

मिसेज कुट्टी उस महिला के जवाब में भी सिर्फ दाँत निकालतीं, 'ठीक है।'

'आजकल दफ्तर में बहुत काम है।' मैंने पत्नी से कहा। रात को खाना खाकर हम घूम रहे थे।

'छुट्टी ले लो।' पत्नी ने तुरंत सुझाव दिया, 'नहीं तो चलो, कहीं घूम आते हैं।'

मैं चुप बना रहा। पत्नी भी सुझाव देकर किसी और खयाल में डूब गई। और जैसे नींद से जागी, 'अरे, आज मिसेज कुट्टी का फोन आया था।'

मेरी आँखें तुरंत चौकन्नी होकर पत्नी के चेहरे पर जम गईं।

कह रही थी - पाठकजी को कहीं ब्लड प्रेशर तो नहीं है। आजकल बड़े चिड़चिड़े रहते हैं। तुरंत उबल पड़ते हैं। बात-बात पर डाँटते हैं - मुझे ही नहीं, सबको। बेचारी डरी-डरी-सी थी। कह रही थी, पाठकजी को मत बताना। बार-बार कहे जा रही थी। उन्हें जरूर दिखाओ डाक्टर को। चेक करा लो।

मैंने मुस्कराने की कोशिश की, 'और कुछ कह रही थी?'

'और कुछ नहीं। बोलती ही कहाँ है! पहले तो बड़ी रुक-रुककर बोली। फिर हँसती रही। बड़ी प्रसन्न रहती है।'

अगले कुछ दिन मैंने जान-बूझकर मिसेज कुट्टी से आँख बचाने की कोशिश की। शायद उन्होंने भी।

मुझे अपनी गलती का अहसास हो गया था।

कुछ दिनों बाद वे छुट्टी पर चली गईं - पति की तबीयत खराब थी। हालाँकि बीच-बीच में काम की चिंता में खुद-ब-खुद आ जाती थीं। छुट्टी पर होने के बावजूद।

पति के रिटायर होने के बाद सरकारी मकान बेटी के नाम हो गया था। कुछ दिन रही थी, पर फिर उन्होंने छोड़ दिया। खास दिल्ली वालों की तरह वे उसे औने-पौने किराए पर दे सकती थीं। मगर उन्होंने यह नहीं किया - 'ईश्वर ने बहुत दे रखा है!'

पति की ग्रेच्युटी, अपने-उनके फंड को इकट्ठा कर उन्होंने दो कमरों का मकान खरीद लिया।

'पीछे मंदिर है। सुबह-सुबह हस्बैंड भी वहीं चला जाता है।' नए मकान की उनके लिए यही विशेषता थी, 'एक बेटी है।' और क्या करना।

मैं अस्पताल में देखने गया था। ऐसे अवसर के बावजूद वे मुझे देखकर प्रसन्न हो गईं। पति का पेट बुरी तरह फूला हुआ था। और वे गोद में उसका सिर लिए, धीरे-धीरे सहला रही थीं।

'पाठकजी! पाठकजी आया है!' उन्होंने पति को बताया।

वे अगभग अचेत थे। कूँ काँ... की आवाज आई, बस। मेरे उँगली से मना करने पर मिसेज कुट्टी ने आगे आवाज नहीं दी।

बेटी-दामाद व एक पड़ोसी भी खड़े थे चुपचाप। डाक्टरों से पता चला कि काफी गंभीर मामला है। सारे शरीर पर सूजन आ चुकी है।

मेरी अनिच्छा के बावजूद मुझे ट्रेनिंग पर जाना पड़ा। संकट दोतरफा था। ट्रेनिंग के लिए सरकारी खाते की खातिर जैसे-तैसे दस आदमी पूरे करने थे। और मेरी जगह किसी फालतू आदमी की कुछ दिनों के लिए तैनाती। 'कुछ दिन चेंज ही सही'- मानकर मैं चला गया।

लौटा, तब भी मिसेज कुट्टी छुट्टी पर थीं। पति का इंतकाल हो गया था। पत्नी भी मेरे साथ थी। मैंने घंटी बजाई। उन्होंने स्वयं दरवाजा खोला। कंघा हाथ में था। बालों में कंघी कर रही थीं। क्षण-भर को वैसे ही मुस्कराईं।

हमने चेहरे गंभीर बनाए हुए थे।

'बहुत खराब हो गया था, पेट... ऐसा-ऐसा।' उन्होंने दोनों हाथों से पेट का आयतन बताया, 'टट्टी भी नहीं जा पाता था।' जैसे कोई डाक्टर या नर्स किसी मरीज के बारे में बताती है। न फालतू उदासी का आवरण, न दया की याचना।

ऐसी ही बातों के सहारे हम बैठे रहे।

उन्होंने अपना मकान दिखाया - 'यह कमरा बेटी का, यह मेरा।'

बेटी एक कोने में अपेक्षाकृत सुस्त बैठी थी। वह उठी और अपने कमरे में चली गई।

'परसों हरिद्वार जाएँगे - अस्थि-विसर्जन के लिए। मेरी बहन भी केरल से आज शाम को आ जाएगी।' उन्होंने खुद ही बताया। वे चाय बनाना चाहती थीं। पर हमारे मना करने पर मान गईं।

'काफी हिम्मती हैं। देखो, कैसे मौत को मुस्कराते हुए झेल रही हैं। वरना आदमी रो-रो के पागल हो जाए।' पत्नी ने कहा।

मैं चुप रहा। कई तरह की बातें दिमाग में आर-पार आ-जा रही थीं।

'इनकी बेटी के अभी कुछ नहीं है न? बेचारी अकेली माँ-बेटी। मिसेज कुट्टी के भी तो शायद कोई भाई नहीं है।'

पत्नी हिंदी प्रांत की है। अतः भाई-बहन के इस बीजगणित से बचने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

कुछ दिनों बाद वे दफ्तर आईं। लगभग वैसे ही जैसे कुछ हुआ ही न हो।

'मैं रिटायरमेंट लेना चाहती हूँ। क्या करना! कुछ दिन आराम से काटूँगी।'

मैंने चाय मँगाई। आज उन्होंने चाय को मना नहीं किया।

'लेकिन, अभी तो आपके कई साल बाकी हैं।'

'चार साल बाकी हैं। पे कमीशन की रिपोर्ट आ गई है - पेंशन मिल जाएगी। बहुत है।'

'आपने खूब सोच लिया है न! क्योंकि इतने साल नौकरी करने के बाद कई बार घर पर भी मन नहीं लगता।'

'मेरी बेटी की उम्मीद है।' उन्होंने बताया, 'एक डाक्टर का इलाज चल रहा है। बहुत अच्छा डाक्टर है। उसी के बच्चे को देखा करूँगी... और मंदिर।'

मैंने पत्नी को बताया। पता चला कि बेटी की शादी को आठ साल हो गए हैं। एक ज्योतिषी ने बताया है कि इस साल जरूर कुछ होगा।

मैं नहीं समझा पाया। समझाने का हक भी नहीं था। उन्होंने वालंटरी रिटायरमेंट ले लिया।

ज्योतिषी की बात गलत सिद्ध हुई और डॉक्टर का इलाज भी। मेरी पत्नी की उत्सुकता भी उनमें और उनकी बेटी में हो चली थी, 'भगवान चाहे तो एक ही बच्चा दे, पर दे दे। इसके बहाने वक्त तो काट लेता है आदमी।'

हम दूसरे शहर में आ गए हैं।

मेरी डायरी में अभी भी उनका पता लिखा हुआ है। कभी-कभी उत्सुकता होती है - पता कराऊँ कि कैसी हैं! बेटी के कोई बच्चा...

मुझे पता है, कैसी भी हों, उनकी मुस्कराहट पर कभी कोई दयनीयता नहीं आएगी। चमकीले दाँत तुरंत बोल उठेंगे, 'ठीक हूँ।'

कहते हैं, मरने के बाद केवल दाँतों का रूप नहीं बिगड़ता।

X